RESEARCH PAPER | Social Science | Volume : 6 | Issue : 4 | April 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

जैन आगम साहित्य मे चित्रत राजतिलक समारोह व उत्तराधिकार नियम

KEYWORDS

Prof Dr B L Sethi
Director, Trilok Institutute of higer Sturdies and Research , Hotel OM Tower, Church Road M I Road, Jaipur- 302001

Lalita Yadav
Scholar, Research JJT University Jhunjhunu Rajasthan

राजतिलक समारोह का भी जैन आगम पुराण साहित्य मे आचार्य जिनसेन के आदिपुराण मे पूर्णतया वर्णन आया है। इस अवसर पर नगर को ध्वजा और पताकाओ से सजाया जाता था।[1] आनन्दभेरी बजती थी वीरवनिताएँ मंगलगान करती और देवांगनाओं द्वारा नृत्य किया जाता था, बन्दीजन मंगलपाठ करते थे और चारों और से जय जीत की घोषणा की जाती थी।

राजतिलक समारोह की क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिये सभामण डप के मध्यभाग में मिट्टी की वेदी बनायी जाती थी इस वेदी पर एक आनन्दमण्डप का निर्माण किया जाता था। इस आनन्दमण्डप के ऊपर रत्नों के चूर्ण समूह से रंगावलि तैयार कर चित्रावलि तैयार की जाती थी और नाना प्रकार के विकसित सुगन्धित पुष्प वहाँ फैला दिये जाते थे। मणियों से जटित फर्श के ऊपर मोतियों की वन्दनवारे लटका दी जाती थी और रेशमी वस्त्र के चंदोवे सभी और टांग दिये जाते थे। इस मंडप के मध्य भाग में अष्टमंगलद्रव्य स्थापित किये जाते थे और देंवागनाएँ मंगलद्रव्य को लेकर अवस्थित रहती थी। स्नान की सामग्री एक दूसरे के हाथों में दी जाती थी। लीलापूर्वक पैर में नूपुर पहनकर देवांगनाएँ रूनझुन करती हुई भ्रमण कर रही थी। उनके नूपुरें की ध्वनि बहुत ही मधुर और आनन्दमयी प्रतीत हो रही थी। उत्तराधिकार मिलने वाले राजकुमार को रंगभूमि में सिंहासन स्थापित कर पूर्वदिशा की और मुख करके बैठाया जाता था। गन्धर्व मनोहर गान करते थे तथा मंगल वाद्यों की ध्वनियाँ आनन्द का सृजन कर रही थी। नृत्यांगनाएँ अभिषेक क्रिया सम्पन्न होने वाले परिवार का गुणगान करती थी। सामन्त और अधीनस्थ राजन्यवर्ग ओषधिमिश्रित सुवर्ण कलशों में रखे गये जल से अभिषेक–क्रिया सम्पन्न करते थे। अभिषेक क्रिया के लिए गंगा, सिन्धु आदि नदियों का जल लाया जाता था। पुण्यमय गंगाकुण्ड से और सिन्धुकुण्ड से भी जल लाया जाता था।

सरस्वती आदि अन्य नदियों से तथा स्वच्छ और निर्मल कुण्डों से जल लाया गया था। वापीजल केसर कुंकुम युक्त जल, लवणसमुद्र, नन्दीश्वरदीव आदि प्रसिद्ध स्थानों का जल लाया गया था। इसके अतिरिक्त क्षीरसागर, नन्दीश्वर समुद्र और स्वयम्भूरमण समुद्र का जल भी लाया जाता था। सरयू का जल, तीर्थजल, कषायजल, सुगन्धित द्रव्य मिश्रित जल एवं गर्म कुण्ड का जल लाया गया था। इस तीर्थोपनीत जलद्वारा केशर, कस्तूरी, चन्दन तथा अनेक जड़ी बूटियों मिश्रित कर जलाभिषेक किया जाता था। वन्दीजन मंगलपाठ करते थें और उत्तराधिकार प्रदान करने वाले महाराज उत्तराधिकारी को अभिषेक के अनन्तर पद बांधते थे। तथा नाना प्रकार के सुन्दर वस्त्राभूषण भी प्रदान किये जाते थे। उस अवसर पर धार्मिक विधि–विधान भी सम्पन्न होता था।

दूत

आदिपुराण में दूत का उल्लेख कई रूपों में आया है। जिस दूत में अमात्य के सम्पूर्ण गुण विद्यमान हो उसे निःसृष्टार्थ,[2] जिसके चौथाई गुण कम हो उसे परमितार्थ और जिसमें आधे गुण कम हो उसे शासनार्थ दूत कहा जाता है।

राजदूत को चाहिए कि वह शत्रु देश के वनरक्षक, सीमारक्षक, नगररक्षक, नगरवासियों और जनपदवासियों से मित्रता करें। शत्रु देश की राजधानी, दुर्ग, राज्यसीमा, आय, उपज, आजीविका के साधन राष्ट्ररक्षा के तरीके एवं वहाँ के गुप्त भेदों की दूत को जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। शत्रु राजा के देश में प्रवेश करने के पूर्व वहाँ के राजा से उसे आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए, तभी वहाँ अपने कार्य में सिद्धी प्राप्त कर सकेगा।

गुप्तचर

आदिपुराण में गुप्तचरों को राजा का चक्षु कहा गया है। नेत्र तो केवल मुख की शोभा ही बढ़ाते है और पदार्थों को देखने का ही कार्य करते है पर गुप्तचर रहस्यपूर्ण[3] बातों का पता लगाकर राज्यशासन को सुदृढ बनाते है। वर्णन आया है–

(1)गुप्तचर राज्य–व्यवस्था एवं शासन–व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में सहायक है।

(2) प्रजा के सुख एवं उसकी शांति में बाधा उत्पन्न करने वालों का पता

गुप्तचरों द्वारा ही लगता हैं।
(3) प्रमुख सूचनाओं को एकत्र कर गुप्तचर राजा के पास पहुँचाते है।
शासन में विघ्न या गड़बड़ी उत्पन्न करने वाले की जानकारी गुप्तचर विभाग से ही प्राप्त होती थी। स्वराष्ट्र और परराष्ट्र सम्बन्धी व्यवस्थाएँ और सूचनाएँ एकत्र करने का कार्य गुप्तचर विभाग ही करता था। शासन संचालन के लिए कौटिल्य ने भी सन्धि, विग्रह, चतुरुपाय और तीन शक्तियों को उपयोगी माना है।

अन्तःपुर और कन्चुकी

कंचुकी उस समय राजा के अन्तःपुर का रक्षक होता था और वह राजकुमारियों के स्वयंवर के समय स्वयंवर मण्डप में उपस्थित राजा व राजकुमारों का परिचय देने का कार्य करता था। आदिपुराण में श्रीमती के स्वयंवर के प्रसंग में इसी कार्य को करने वाले कन्चुकी का उल्लेख है। राजा के अन्तःपुर में अनेक रानियाँ होती थी। वे बारी–बारी से राजा के दास भवन में जाती थी।

अस्त्र–शस्त्र

आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण में अनेक प्रकार के अस्त्र–शस्त्रों के नाम और कहीं–कहीं उनकी निर्माण सामग्री का भी उल्लेख किया है। इन अस्त्र–शस्त्रों में तलवार, तीर आदि के साथ ही मुद्गर, भुशुण्डी, फरसा, त्रिशूल, अल, भिन्दिमाल, वावल्ल, सेल, झस, शक्ति, मूसल, सव्वल,(लोहे का भाल), चक्र, पास, कोत, धनथन मुख्य है। इन समस्त अस्त्र–शस्त्रों का उल्लेख जैन आगम साहित्य में भी हुआ है।[4] आचार्य जिनसेन ने मेघपुत्र और सुनमि के युद्ध में अनेक प्रकार के बाणों और प्रतिबाणों का उल्लेख किया है। अन्धकार बाण सब जगह अन्धेरा कर देता था और लोग आलस्य के कारण जम्हाइयां लेने लगते थे परन्तु उस बाण का प्रभाव दिनकर बाण से नष्ट कर दिया जाता था। इस प्रकार सिंह तीर का स्वापद तीर से, अग्नितीर का मेघ तीर से, पर्वत तीर का व्रज तीर से, सर्प तीर का गरूड़ तीर से, महीधर तीर का अग्नितीर से, गजतीर का सिंह तीर से, प्रभाव समाप्त किया जाता था। इन तीरों के अग्र भाग पर अधिकांशतः लोहे के नुकीले फलक लगाये जाते थे और इनकी गति को तेज करने के लिए पीछे पंख लगा दिये जाते थे। आदिपुराण में राजा की दिनचर्या में प्रतिदिन विविध प्रकार के आयुधों, भवनों के निरीक्षण का विवरण मिलता है।

लौह, चर्म, काष्ठ, कपास एवं शल्क आदि से अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण किया जाता था। सामान्यतः काष्ठ और लौह का ही प्रयोग सर्वाधिक होता था। भुजत्राण–बाहु की रक्षा का शस्त्र, शिरस्त्राण– शिर को बचाने की लोहे की टोपी और अङ्गत्राण – कवच का भी प्रयोग किया जाता था। सेना में कुछ खड्.ग, कुछ बरछा, कुछ भाला, चक्र एवं मुद्गर धारण करने वाले, कुछ शक्तिशूल धारण करनेवाले और कुछ असिधेनु का आदि धारण करने वाले सैनिक रहते हैं। आदिपुराण में निम्न अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग

Volume : 6 | Issue : 4 | April 2016 | ISSN - 2249-555X | IF : 3.919 | IC Value : 74.50

पाया जाता है[5] –

अग्निवाण (अग्नि के समान तीक्ष्णबाण), अमोघवाण (कभी व्यर्थ न पड़ने वाले बाण), असि, असिधेनुका, आग्नेयवाण, कपिशीर्षक धनुष, कुन्त (वर्छा), कृपाण, कौक्षेयक (तलवार), क्रकच (आरा), खग (वाण), गजवाण, चक्र, चण्डवेगदण्ड, चर्मरत्न, चाप, जलवाण, तमोवाण, दण्ड, धनुषवाण, निर्घात (वज्र), पवनवाण (भाल), प्रास, भूतमुखखेट, मनोवेगकषाय, मुद्गर, मेघवाण, यष्टि, लकुट, लोलवाहिनी असिपुत्रिका, वज्र, वज्रकाण्ड धनुष, वज्रतुण्डा शक्ति, विशिख, व्यस्त्र (महास्तम्भक दिव्यास्त्र), शस्त्र, सिंहवाण, सुदर्शन चक्र, सूर्यवाण, सौनन्दिक तलवार, इन अस्त्र–शस्त्रों के अतिरिक्त सैन्य सम्बन्धी निम्नलिखित सामग्री[6] भी उपलब्ध होती है – अजितंजय रथ (चक्रवर्ती रथ), अभेद्य कवच (दैदीप्यमान एवं वाणों से भेदा न जाने वाला), असिकोष, आयुध, आयुधालय, कवच, टोप, तनुत्रिक, (शरीर पर धारण करने वाला कवच), तसरू (तलवार की मूठ), निगड (वेडी), नि÷ांग, पृतना, बल, वैसाखस्थान (वाण चलाने का स्थान), ɖाख्य (निशाना), ɖारव्रात (वाणसमूह), शिरस्त्र (शिर को बचाने वाली टोपी), सन्नाह (शरीर पर धारण करनेवाला कवच), सर्वायुध, संवर्मित (कवच धारण किये हुए सैनिक)। राधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था। यदि ज्येष्ठ पुत्र योग्य नहीं होता तो छोटे पुत्र को राजसिंहासन दे दिया जाता था। राजा की मृत्यु के बाद ही उसका पुत्र राजा का उत्तराधिकारी होता था। राजागण अपने पुत्र को राज्यभार सौंप कर दीक्षा ग्रहण किया करते थे।

राजा व राजपुत्रों के आपसी सम्बन्धों के सम्बन्ध में आदिपुराण से ज्ञात होता है कि राजा राजपुत्रों में उत्तराधिकार प्राप्त करने की लोलुपता के कारण उनसे हमेशा शंकित और भयभीत रहता तथा उन पर कठोर नियन्त्रण रखता था। फिर भी ऐसे उदाहरण मिलते है कि कुछ महत्वाकांक्षी राजपुत्र अवसर पाकर येनकेन प्रकारेण राजा से राजगद्दी छीनकर या राजा की हत्या करके राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए है। इस प्रकार एक तरफ राजा राजपुत्रों से आशंकित तथा भयभीत रहता था तो वहीं दूसरी तरफ राजपुत्रों के भयभीत होने के प्रसंग भी जैन आगम में बहुतायत से मिलते है। जैसा कि कौटिल्य विधान में कहा गया है कि राजा को केंकड़े के समान अपने पुत्रों से सावधान रहना चाहिए और उत्श्रृंखल राजकुमारों को किसी निश्चित स्थान या दुर्ग आदि में बन्द करके रखना चाहिए। परिणामस्वरूप ऐसी दशा में राजकुमार राजा के भय से आक्रान्त रहते थे।

1. आचार्य जिनसेन – ''आदिपुराण'' 37/160–170, 84, 44/81,121,180,189,143,240,242, 5/113,250, 3/172,105, 10/56,59,73, 4/175,176
2. आदिपुराण 37/85,165, 36/14,80,138
3. डॅा. नेमिचन्द्र शास्त्री –''आदिपुराण में प्रतिपादित भारत'' पृष्ठ –374–375
4. शुक्र नीति 1/323
5. आदिपुराण 4/ 868–869
6. आदिपुराण 10/198–199